ISSN: 2393-8900 IMPACT FACTOR : 1.9152(UIF) VOLUME - 4 | ISSUE - 11 | JULY - 2018

HISTORICITY RESEARCH JOURNAL

उपेक्षित समाज की अवधारणा

प्रा.प्रशांत नारायण ढेपे

हिंदी विभाग प्रमुख , ल.सी.हलबे महाविद्यालय, दोडामार्ग , ता - दोडामार्ग, जिला - सिंधुदुर्ग.

प्रस्तावना :

भारतीय समाज व्यवस्था विश्व में एक निराली समाज व्यवस्था हैं । यहाँ समाज सुगठित नहीं है, वह विभिन्न जाति समूह में बंटा हुआ हैं । यह जाति समूह एक दूसरे से टूटे हुए नजर आतें हैं । हिंदू धर्मव्यवस्था के चातुर्वर्ण्य के आधार पर समाज का विभाजन हुआ हैं । ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र इन चार विभागों में बंटा समाज भारतीय समाज व्यवस्था को कमजोर बनाता है । तीन वर्णो के तले दबे हुए शुद्र वर्ण को मनुष्य कहलाने का अधिकार नहीं हैं । उसकी प्रताड़ना, अपमान इस तरह किया हैं कि पशुओं से बदत्तर स्थिति उनकी बना दी थी । यही समाज हैं जिसे हम आज भी दलित, आदिवासी, और मजदूरों तथा किसानो के रूप में देखते है, जो आर्थिक, शिक्षा, सामाजिक अस्समान एव अन्य जीवन यापन की सुविधाओं के आभाव में जी रहा है, ऐसे ही समाज को उपेक्षित के कोटि में रखा जाता है। ऐसी असुविधाओं में जीकर वह समाज विकास से वंचित हो जाता है और फिर उसे अविकसित एव उपेक्षित समाज कहा जाता है। जो उपेक्षित है वही शोषित कहलाता है क्योंकि उपेक्षित रखने की प्रवृत्ति ही शोषण प्रक्रिया का अंग है। जिसमे शुद्र वर्णी समाज प्रमुख रूप से उपेक्षित दिखाई देते है। इसके साथ ही अन्य जातियों के वही लोग जिन पर सामाजिक अन्याय हुआ है अथवा अन्य सामाजिक घटकों द्वारा किसी प्रकार से उनका शोषण हुआ हो या जीवन उपयोगी सुविधाओं से उन्हें वंचित रखा गया है वह भी उपेक्षित कहलाते है। कूल मिलकर उपेक्षित व्यक्ति अथवा समाज वही कहलाता है जिनको वर्चस्ववादी, धर्म-समाज के ठेकेदारों से अथवा सामंतवादी यों से किसी न किसी प्रकार के सामाजिक अन्याय,अस्समान, शोषण अथवा असुविधा को सहना पड़ता है वही उपेक्षित कहलाता है।

प्राचीन काल से ही चातुर्वर्ण्य अनिष्ट समाज रचना वर्चस्ववादियों द्वारा बनाई गई है। इसमे शुद्रों के साथ प्राचीन काल से ही दुर्व्यव्हार किया गया है एव उन्हें अस्समान दिया गया है । शुद्रो से छु-अछुत की प्रवृत्ति प्राचीन काल से देखि जा सकती है। शुद्र मनुष्यों द्वारा छूने से छूत की बिमारी लगती हैं, ऐसी धारणा बनी । जन्म से लेकर मृत्यु तक इनके हिस्से का जीवन उपेक्षित रहता हैं । सवर्णोसे, पुरूषी सत्ता से, सरकार से, जमिनदारों से, ठेकेदारों से और समाज व्यवस्था से होने वाले अत्याचारों से, दरिद्रतासें, अज्ञानसे,. दुःख–कष्टो से यह समाज इस भारत

में सदियों से अपमान की जिंदगी जी रहा है। धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं व्यावसायीक बंधनों के कारण यह समाज सदियों से उपेक्षित रहा है ।

हजारों वर्षो से मनुप्रेरित समाज व्यवस्था ने उपेक्षित वर्ग को जाति व्यवस्था की प्रेम में बंदिस्त किया था । पाप-पून्य, स्वर्ग-नरक जैसी विचारधाराओं ने जखड़ा हुआ था । जिसके कारण उन्हें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक आधिकारों को षड़यंत्रपूर्वक दूर रखा गया था । परिणाम स्वरूप उनके विकास पथ की बाधाएँ बड़ती ही गई । कारण था भारतीय समाज की जातियाँ । समाज की जाति के कारण समाज विघटीत हुआ और ऊँच-नीच विचारधारा के कारण सामाजिक नुकसान हुआ है । इसी संदर्भ में गोपाल गणेश आगरकर कहते हैं-''जाति भेद से अपना देशाभिमान कितना संकुचित हुआ है । जाति से ज्ञान कला, शास्त्र इत्यादी जहाँ के वहाँ कुंठित हुए है । जाति से धर्म विचार और आचार में कितना मतभेद उत्पन्न होकर वह बैर, छल और मत्सर के लिए कारण हुआ है । जाति के कारण देश में या विदेश के लिए प्रवास कठिन हुआ है । जाति से अन्न व्यवहार, विवाह इत्यादी के संबंध में कितनी असुविधाएँ हुई है । जाति से द्विपस्थ और परधर्मीय लोगों से अलग-अलग रहने लगने से कितना नुकसान होता है, जाति से हमारी भूतदया, हमारा बंधुप्रेम हमारी उदारता, धर्मबुध्दि, हमारी परोपकारिता हमारे विचारों का क्षेत्र कितना मर्यादित हुआ है ।''[1] याने जाति व्यवस्था समाज हर एक तपके के लिए हानिकारक है, फिर भी सदियों से **यह** व्यवस्था चली आ रही है ।उपेक्षित समाज के जीवन को समजने के लिए उपेक्षित याने कौन ? उसकी परिभाषा क्या है ? उपेक्षित वर्ग का स्वरूप क्या **है** । **इस विषय में हम संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाल सकते है ।**

अ. उपेक्षित शब्द का अर्थ :

'उपेक्षित' शब्द का प्रयोग 'दलित' शब्द के समकक्ष ही किया जाता है । **क्योंकि प्राचीन काल से इनका ही शोषण करते हुए उन्हें विकास से वंचित रखा गया है इसीलिए प्रमुख रूप से इन्हें अविकसित,पिछाडा अथवा उपेक्षित समाज कहा जाने लगा ।** इसके साथ ही प्राचिन काल से ही शुद्र, अतिशुद्र, अत्यंज, सर्वहारा, चांड़ाल, अस्पृश्य, तिरस्कृत आदि नामों से उपेक्षित समाज को जाना जाता था ।

नालंदा अद्यतन कोष में उपेक्षा शब्द का अर्थ 'लापरवाह', अयोग्य समझकर ध्यान न देना या सत्कार न करना (डिस रिगार्ड) है और उपेक्षित शब्द का अर्थ 'जिसकी उपेक्षा की गई हो, तिरस्कृत' बताया है । नालंदा विशाल शब्द सागर में उपेक्षक का अर्थ 'उपेक्षा करने वाला, लापरवाह, घृणा करने वाला' बताया है, तो उपेक्षणिय का अर्थ -'प्रतिकार की चेष्ठा न करने वाला, घृणा के योग्य, त्यागने योग्य' बताया है । उपेक्षा शब्द का अर्थ-'उदासीनता, लापरवाही, विरक्ति, किसी को तुच्छ अथवा नगण्य समझना, अयोग्य जानकर ध्यान न देना या सत्कार न करना है । तो उपेक्षित का अर्थ- जिसकी उपेक्षा की गई हो, अनादर किया हुआ, तिरस्कृत आदि है । और उपेक्ष्य शब्द का अर्थ -'उपेक्षा के योग्य, घृणा के योग्य' है ।[4]

लोक भारती ब्रहत प्रमाणित हिंदी शब्द कोश में उपेक्षा शब्द का अर्थ -1. 'उदासीनता, लापरवाही, विरक्ती । 2. किसी को तुच्छ या नगण्य समझना, अयोग्य समझकर ध्यान न देना, या आदर न करना (डिस-रिगार्ड) है । तो उपेक्षित का अर्थ-'जिसकी उपेक्षा की गई हो, तिरस्कृत' है ।[5]साहनी हिंदी शब्दकोश में उपेक्षा का अर्थ - अवहेलना अपमान, नजर अंदाज, लापरवादी और उपेक्षित शब्द का अर्थ - 'तिरस्कृत' बताया है ।[6]

उपेक्षा एवं उपेक्षित शब्द का अर्थ विविध शब्द कोशो में लगभग एक समान ही मिलता है । अपमान, अवहेलना, दुमित, अपमाणित, लापरवाही, घृणा करने वाला, त्यागने योग्य, उदासिनता, अनादर किया हुआ, तिरस्कृत आदि अर्थो से 'उपेक्षित' शब्दो का वर्णन मिलता है । जो हमे दलित, आदिवासी और स्त्री की ओर इशारा करता है कि यह शोषित, अवहेलना,तिरस्कृत जैसी भावनाओं और समाज व्यवस्था से उपेक्षित रहे हैं।

ब. उपेक्षित समाज की परिभाषा :

उपेक्षित वह व्यक्ति या समाज है, जो संकुचित सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है । उपेक्षित, वंचित, शोषित, बहिष्कृत समाज दलित समाज ही है, जो हजारों वर्षो से बहिष्कृत और उपेक्षित जीवन जी रहा है । इसी अवधारणाओं की

कसोटी में आदिवासी और स्त्री समाज का दृष्टव्य होता है । दलित समाज परिभाषाओं से यह अर्थ और भी सटीक दिखाई देता है ।

1. डॉ. भगवानदास दलित समाज के बारे में कहते हैं–''वस्तुत : दलित या शोषित वर्ग से तात्पर्य है, एक ऐसे वर्ग समूह, जाति समूह विशेष का व्यक्ति अथवा वह जाती उसके धन संपत्ति माल अधिकार एवं श्रम आदि का हरण किसी अन्य सत्ता शक्ति संपन्न वर्ग या जाति के द्वारा किया जाता है ।''

2. ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं–''दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो ।''

3. एच. आर. गौतम दलितों के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं–''दलित कहा जानेवाला ही कभी 'शुद्र', 'अनार्य', 'अस्पृश्य', 'अछूत' और गांधी जी का 'हरिजन' कहा जाता है । इसमें 'आदिवासी', 'घुमंतु', 'अपराधशील जातियाँ, महिलाएँ और बंधुआ मजदूर भी सम्मिलित है । इनका अपमान, शोषण, दलन, प्रताड़ित किया गया । पशुओं से भी बदत्तर इन्हें माना गया है ।''

4. भालचंद्र फडके अपने 'फुले आंबेडकर शोध आणि बोध' नामक ग्रंथ में कहते हैं– ''दलित वह पूरा वर्ग है जो शोषित, प्रताड़ित, बाधित और वंचित है –जो अपने जीवन और अपने सपनों का नियंता नही हैं ।''

5. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर अपने 'दलित साहित्य और उसकी सीमाएँ', नामक ग्रंथ में दलितो की परिभाषा देते हुए कहते हैं– ''दलित वह है जिसका दलन किया गया हो । 'उपेक्षित', 'अपमाणित', 'प्रताड़ित', 'बाधित' और 'पीड़ित' व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते हैं ।''

6. मराठी के चर्चित कवि नारायण सुर्वे ने कहा है –''इसका अर्थ केवल बौध्द या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं है । समाज में जो भी पीड़ित है, वे दलित है।''

7. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर के अनुसार–''दलित जातियाँ वे हैं जो अपवित्रकारी होती है । इनमें निम्न श्रेणी के कारीगर, धोबी, मोची, भंगी, बसौर, सेवक जातियाँ जैसे चमार, ड़ांगरी (मरे हुए पशु उठाने के लिए) सउरी (प्रसूतिगृह का कार्य करने वाले), ढोला (डफली बजाने वाले) आते हैं । कुछ जातियाँ परंपरागत कार्य करने के अतिरिक्त कृषि – मजदूर का भी कार्य करती है । कुछ दिनों पूर्व तक इनकी स्थिति अर्ध्ददास, बंधुआ, मजदूर जैसी रही है।''

8. मोहनदास नैमिशराय के अनुसार –''दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के समानार्थी प्रतीत होता है । लेकिन इसमें भेद है । दलित की व्याप्ति अधिक है, वही सर्वहारा की सीमित।''

उपर्यूक्त परिभाषाओं से पता चलता है कि उपेक्षित समाज की कसोटी में दलित, आदिवासी और स्त्री वर्ग का दर्शन होता है । जिनका दमन, दलन, शोषन तिरस्कार, बहिष्कार जाति के आधार पर शुद्र, अस्पृश्य समजकर किया जाता है । वे दरिद्रता में पलते, कष्ट उठाते हैं, सामाजिक स्थान, दर्जा से वंचित है । और सामाजिक धार्मिक व्यवस्था द्वारा अपमाणित करते हुए उनकी उपेक्षा कि जाती है । मजदूर किसान, सर्वहारा समाज को भी अपमाणित होकर उपेक्षित जीवन मजबूरी में जिना पड़ रहा है । अन्याय–अत्याचार को सहते हुए मानव अधिकारों से उपेक्षित समाज को वंचित रखा जाता है । इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अत्याचारों का उत्प्रेरक स्त्रोत किसी न किसी रूप में भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा हुआ माना है । इस संदर्भ में रूपचंद गौतम लिखते हैं कि, ''आर्य धर्मगुरूओं ने जो विधि के भी निर्णायक थे, समय–समय पर ऐसे काले कानूनों की घोषणा की जिनसे तथाकथित शुद्र को मानव स्तर से ही नहीं बल्कि उसे अधिकार विहिन कर पशु–सतर से भी नीचे गिरा दिया ।''कुल मिलाकर उपेक्षित वह व्यक्ति या समाज है जो संकुचित सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है । और सामाजिक विकास की धाराओं से जिन्हे वंचित एवं उपेक्षित रखा जाता है । दलित, आदिवासी, स्त्री, मजदूर, किसान को उपेक्षित समाज की कसोटी में गिना जा सकता है ।

क. उपेक्षित समाज का स्वरुप :

यह बात सही है कि मनुष्यों के समूह को समाज कहा जाता है, पर यह बात भारत में अभी तक तय नहीं हो पाई है, कि मनुष्यों के कर्तव्यों के आधार पर समाज का वर्गीकरण हो । देश में साक्षरता भी बढ़ी है और मशीनीकरण का ग्राफ भी ऊँचा हुआ है । उपेक्षित समाज के रंग–रूप और कारोबार बदले हैं, लेकिन उनके सिर से जातिवाद का साया अभी तक नही उतरा है । आज भी मनुष्य के जन्म के आधार पर समाज का वर्गीकरण हो रहा है ।

अपने देश में हजारों साल से यह चलती आई परंपरा दिखाई देती है कि समय–समय पर सामाजिक जीवन के एक बड़े भाग को पीछे की ओर धकेलने का प्रयास किया गया है । देशकाल के अनुसार इन वर्गो का विभिन्न नामाकरण

भी हुआ है । समय-समय पर इन्हें शुद्र, अछूत, अत्यंज ग्लेच्छ, हरिजन, अनुसूचित जन-जातियाँ आदि शब्दों का प्रयोग होता हुआ दिखाई देता है । इन शब्दों से किसी न किसी प्रकार से असमानता का भाव नजर आता है । कल का यही समाज दलित, आदिवासी, स्त्री के नाम से जाना जा रहा है जो उपेक्षित समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं । उपेक्षित समाज की अवधारणा और स्वरूप के भ्रम को दूर करने के लिए दलितोध्दारक डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर के विचारों का संदर्भ देखना नितांत जरूरी है । 'उन्होंने 'Who were shudras' नामक ग्रंथ लिखकर ब्राम्हणी तत्वज्ञान का, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से शुद्रों और अस्पृश्य आदिवासी विमुक्त जमाते ओर भटकनेवाली जमाते एक ही सूत्र में गुथी हुई होकर वे जन्म जाति, व्यवसाय परंपरात रूढ़ि और धर्म गंथों द्वारा दूर रखी गई है । इसलिए दलित संज्ञा की व्याप्ति में इतर वर्गो के साथ डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर की कसौटियों के अनुसार शुद्रों का वर्ग भी आता है । इन शुद्रों में आज के पिछड़े हुए वर्ग का समावेश हो सकता है ।''[19] इस संदर्भ में देखा जाए तो उपेक्षित बनना एक प्रकार की जीवन स्थिति है । जिनमें सवर्ण शक्तिशाली विचार धारा के द्वारा दलितों, आदिवासी और स्त्रियों का शोषण करने का वर्णन मिलता है ।

भारतीय हिंदू समाज में वर्ण-व्यवस्था के आधार पर जो अखंड हिंदूवादी राष्ट्र को चार वर्णो में विभाजित किया । उसका ही परिणाम है सदियों से चलता आया जातिभेद । जो असमानता वर्चस्व और पूर्णतः शोषण पर आधारित है । ''शोषण एक ऐसा सत्य है, जो हर काल में सक्रिय रहा है ।''[20] अपने देश में जब से वर्ण व्यवस्था के आधार पर जाति का बटवारा हुआ है तब से दलितों, आदिवासी और स्त्रियों का जीवन समाज में परतंत्र है । मानो ऐसे विषमतावादी व्यवस्था में इनका विकास एवं जीवन कठिन होता नजर आता है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत में हजारों सालों से दलित, आदिवासी, स्त्री जैसे उपेक्षित समाज वर्ग का सामाजिक, आर्थिक शोषण ही नही किया, बल्कि सदियों से उन्हें शिक्षा के अधिकारों से भी पूरी तरह कोसो दूर रखा गया है । सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक विरासत के अधिकारी होते हुए भी उन्हें अपनाने का या अपना विकास करने का मौका नही दिया गया है । कुछ एक अपवादों को छोड़कर आज भी कुछ एक हद्द तक सवर्ण समाज उनके प्रति ऐसा सोचने के लिए मजबूर करती है कि उसकी अपनी संस्कृति हीन और घटिया है ।

इक्कीसवी सदी की ओर समाज बड़ रहा है । कुच जानकारों का मानना है कि भारतीय समाज भी विकास की ओर बड़ रहा है । आज कल इन्हीं विचारों का वहन हो रहा है । कुछ हद तक यह सत्य भी है, परंतु यह पूरा सत्य नहीं है । समाजिक विकास की मात्रा जब-तक अंतीम पंक्ति में खडे मनुष्य तक नही पहुचती तब-तक समाज विकास की ओर नही बड़ता है । और उस समाज को विकसित समाज का दर्जा भी नही मिलता । आज भी उपेक्षित समाज को वंचित करने के सूत्र स्थापित किए हुए है । उपेक्षितों के वोट से सवर्णो की सरकार बनती है । विकास के सारे आयाम सरकार ने सवर्णो के लिए खूले किए है । शिक्षा संस्थान सवर्णो के है । फीस अधिक होने के कारण उनमें प्रवेश लेना दलितों, आदिवासियों के लिए संभव नही है । सरकार ने नियम तो बनाएं है कि शिक्षा संस्थान में दलित, आदिवासियों और स्त्रियों को प्रवेश देगें । पर नियम भी केवल कागजों तक ही सीमित है । सरकार ने उपेक्षित वंचित समाज के लिए आरक्षण का प्रावधान तो रखा है, लेकिन वह कार्यांवित नही होता है । रूपचंद गौतम इस के बारे में लिखते हैं कि, ''देश के किसी भी सरकारी संस्थान में आरक्षण पूरा नहीं हो सका है । पूरे देश की बात छोड़िए दिल्ली विश्वविद्यालय में ४० कॉलेजों में एक भी कॉलेज का प्राचार्य दलित नहीं है । रीड़र, प्रोफेसर की तो बात ही अलग है । प्रवक्ता तक की सीटें खाली पड़ी है । हंसराज सुमन की रिपोर्ट यह बताती है कि देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय में आरक्षण कोटा गुड फील मनाने वाली सरकार ने भरा ही नहीं है । शोर मचाते रहे कि हमें योग्य उम्मीदवार मिलते नहीं । जबकि ऐसा नहीं है । पूरे देश की बात तो अलग है दिल्ली में ही ऐसे कई विद्वान हैं जो रीडर, प्रोफेसर, प्राचार्य एवं कुलपति बनने योग्य है ।''[21] यही हमारे समाज की वास्तव स्थिति है । लोकतंत्र केवल नामका ही है । क्योंकि उन्हें चलाने वाले सवर्णो की विषमतावादी व्यवस्था है, जो उपेक्षित समाज का जात, धर्म के आधार पर शोषण करती है । और सामाजिक दर्जा, स्थान से, आर्थिक मजबूत स्थिति से उन्हें आज तक वंचित रखा है । प्रो. यशपाल इस संदर्भ में कहते हैं कि,''हमारे देश में लोकतंत्र तो है, लेकिन हम समाज में असमानता की भावना को आश्रय दे रहे हैं । हम धर्म, जाति, जाति और आय के आधार दूसरों से अलग दिखाना चाहते हैं । हमारे लोकतंत्र के कई अंग इसी हीन भावना से ग्रस्त हैं । यह हमारे लोकतंत्र की सबसे बड़ी विफलता है कि वह आज तक अपनी जनता को शिक्षित करने के लिए शिक्षा की बुनियादी संरचना विकसित नहीं कर पाया है । हमारी शिक्षाव्यवस्था में आई असमानता की भावना को खत्म करने के लिए दृढ़ सामाजिक और राजनीतिक प्रतिबध्दता की जरूरत है।''[22]

उपेक्षित समाज का शोषण जिस प्रकार वर्ण-व्यवस्था ने किया है, वैसे ही पूंजपति व्यवस्था ने भी किया है । भारत में जमींदार, कायस्थकार, रियासतदार थे। इनके खेत-खलिहान थे, उद्योग थे, उद्योगों में श्रमिक इनके थे, लेकिन इन सब पर नियंत्रण अंग्रजों का ही था, इसलिए ये अंग्रेजों के गुलाम थे । पर दलित, आदिवासी, मजदूर गुलामों के गुलाम थे । चलने-फिरने, खाने-पीने, लिखने-बोलने आदि का अधिकार वर्ण-व्यवस्था ने इनसे छीन रखा था । इसके बदले में इन्हें बेगार के अलावा मलवा उठाने का अधिकार तोहफे के तौर पर दे रखा था । पूर्ण रूप से दलितों, आदिवासी और स्त्रियों को शारीरिक गुलाम के अलावा मानसिक गुलाम भी बना रखा था । इस गुलामी से छुटकारा पाने के लिए किसी ने प्रयत्न किया तो व्यवस्था उसे प्रताड़ित और बहिष्कृत करती है ।

आधुनिक युग में उपेक्षित समाज ने अपने स्थान, दर्जा और शक्ति को पहचाना है । इस शक्तियुक्त आत्मविश्वास को कायम रखने और आगे बढ़ाने का प्रयास भी करता रहा है । अब इस दृढ़ मानसिक विद्रोह को दबाने की कोशिश भी साथ-साथ ही चल रही है, परंतु यह विद्रोह शायद ही थमने वाला है । और इसें दबाने की ताकद शयद ही सवर्ण समाज बटोर पाऐगा । डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, महात्मा फुले, गौतम बुध्द, काल मार्क्स आदि के विचारों की प्रेरणा लेकर उपेक्षित समाज सामाजिक असमानता के विरूध्द सामाजिक समानता के लिए संघर्ष कर रहा है । दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श जैसे आदि सामाजिक आंदोलन के आज-कल उदाहरण मिलते है, जो वर्तमान समाज की वास्तविकता का दर्शन करवाते हैं । साहित्य समाज का दर्पन है । इसी कसोटी को ध्यान में रखते हुए दलित, आदिवासी और स्त्री साहित्यकारों ने अपनी वेदना, अपमान, शोषण और मानविय अधिकार का चित्रण साहित्य के माध्यम से समाज के सामने लाया है ।

कुल मिलाकर उपेक्षित समाज का अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष अनिवार्य है। इस संघर्ष का कोई अंत नही है । उपेक्षित समाजों में अब प्रतिकारों की भावना जग गई है, हजारों वर्षो की विषमतावादी संस्कृति के ख़िलाप । जिन्होंने उपेक्षित समाज की हर क्षेत्रों में अवहेलना, अपमान और तिरस्कार किया है । **ऐसे वर्चस्ववादियों को अब उपेक्षित समाज विद्रोह भरे स्वर में न्याय की मांग कर रहा है। वह इस शोषण की प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ना चाहता है ताकि यहाँ हर समाज हर व्यक्ति मनुष्य बनकर जी सके पशु बनकर नहीं।**

संदर्भ ग्रंथ :

1. हिंदी कहानी और उपेक्षित समाज -डॉ. संजय एल. मदार पृ.सं.174
2. उपेक्षा - जनवरी-जून 2010 पृ.सं.14
3. नालंदा अद्यतन कोष - संपा. पुरुषोत्तम नारायण अग्रवाल पृ.सं.108
4. नालंदा विशाल शब्द सागर -संपा. श्री नवल जी पृ.सं.165
5. लोकभारती - बृहत प्रमाणिक हिंदी कोश पृ.सं.125
6. साहनी हिंदी शब्द कोष - संपा. एस.बी.साहनी पृ.सं.59
7. दलित कहानियों में नारी - डॉ. साताप्पा शामराव सावंत पृ.सं.12
8. वही पृ.सं.12
9. समन्वय -4 मार्च 1011- संपा. डॉ. आशोक जोंधळे पृ.सं.09
10. फुले अंबेडकर शोध आणि बोध-भालचंद फडके पृ.सं.115
11. हिंदी और मराठी का दलित साहित्य : एक मूल्यांकन - डॉ. सुनीता साखरे पृ.सं.14
12. वही पृ.सं.15
13. दलित कहानियों में नारी -डॉ. साताप्पा शामराव सावंत पृ.सं.12
14. हिंदी और मराठी का दलित साहित्य : एक मूल्यांकन - डॉ. सुनीता साखरे पृ.सं.15
15. साहित्य दर्पन - डॉ. इबतवार दशरत , डॉ. वसंत क्षीरसागर पृ.सं.85
16. डॉ. अंबेडकर आणि दलित समाज - भालचंद फडके - पृ.सं.85
17. मराठी वाड़मयातील नवीन प्रवाह -सं. शरणकुमार लिंबाळे पृ.सं.66

18. दलित पत्रकारिता के सामाजिक सरोकार – रूपचंद गौतम पृ.सं198
19. हिंदी कहानी और उपेक्षित समाज – डॉ. संजय एल. मादार पृ.सं.14